IJAER/May-June 2019/Volume-7/Issue-6 ISSN: 2278-9677

International Journal of Arts & Education Research

भारतीय –परंपराओं शिक्षा एवं वर्तमान संदर्भ

सुमन शेखावत
शोधार्थी
शिक्षा संकाय
महाराज विनायक ग्लोबल वि.वि. जयपुर

डॉ मनोज लता सिंह
शोध निर्देशिका

सार

वर्तमान संदर्भ में भारतीय –परंपराओं शिक्षा की उपयोगिता पर विचार करने से पूर्व आधुनिक शिक्षा का सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत करना उचित होगा। आज मोटे तौर पर दो प्रकार की शिक्षा व्यवस्था प्रचलित है – प्रथम साधन सम्पन्न वर्ग के लिए विशेष रूप से विकसित शिक्षा। और दूसरी यह शिक्षा व्यवस्था जिसमें स्तर और उपयोगिता से परे साधन हीन शिशुओं और तरूणों को बाँध दिया गया है। परन्तु दोनों वर्गों की शिक्षा की विडम्बना यह है कि यह निरन्तर लक्ष्यहीन होती जा रही है। जहाँ साधन सम्पन्न वर्ग अपनी प्रभुता बनाये रखने के मोह में शिक्षा में बजाय उच्च उद्देश्यता के विविध स्तरों के प्रमाण पत्र और उपाधियों से सम्पन्न होने की जुगत करता है वहीं दूसरे वर्ग का शिक्षार्थी अपना सारा श्रम और समर्पण रखते हुए भी सर्वोत्तम के आस–पास पहुँचने में असमर्थ रह जाता है। इस विचित्र स्थिति के कारण समाज विविध विडम्बनाओं का शिकार हो रहा है। इन्हीं विडम्बनाओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के स्वरूप और उद्देश्यों को ध्यान में रखकर वर्तमान शिक्षा में व्याप्त दोषों का परिहार करने के लिए कतिपय बिन्दुओं पर भारतीय –परंपराओं शिक्षा की उपयोगिता के पक्ष पर बिन्दुशः विचार करना उचित होगा।

मुख्य शब्दः *शिक्षा, वर्तमान*

प्रस्तावना

वर्तमान सन्दर्भ में शिक्षा अनेक स्तरों की पाठशालाओं और मदरसों, विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में विभक्त है। इसे दूसरे शब्दों में प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा वर्गों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक वर्ग की शिक्षण संस्थायें, स्थान, संचालक समूह तथा आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर भी विभाजित है। इन सभी प्रकार की संस्थाओं में शिक्षा, अनुशासन के आधार पर तो अन्तर है ही किन्तु सबसे विचित्र स्थिति यह है कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में कर्तव्य परायणता के स्थान पर येन केन प्रकारेण प्रमाण पत्र तथा उपाधि दिलाने के लिए ही प्रयास किया जाता है। इस शिक्षा के विभिन्न स्तरों को ध्यान में रखते हुए क्रमशः भारतीय परंपराओं शिक्षा के साथ इसके स्वरूप की विभिन्नता को ठीक से समझा जा सकता है।

वर्तमान शिक्षा के साथ भारतीय परंपराओं शिक्षा के स्वरूपगत भेद को समझने के लिए यह उल्लेख करना उचित होगा कि वेद पुराणों के माध्यम से अबाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी को बिना किसी भेदभाव के मानवीय धर्म, सांसारिक कर्तव्य बोध, व्यक्तियों में परस्पर प्रेम, परोपकार आदि सांसारिक गुणों से युक्त करने का प्रयास होता था। यह शिक्षा गुरुकुलों के साथ–साथ सामाजिक समागमों तथा आध्यात्मिक गोष्ठियों के रूप में प्रचलित थी, जो मनुष्य की पूर्णता का हेतु मानी गयी थी। इसकी तुलना में वर्तमान शिक्षा किसी भी स्तर पर प्रभावित नहीं करती।

उद्देश्य

1० भारतीय परंपराओं शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान शिक्षा का मूल्यांकन करना।

2० भारतीय परंपराओं शिक्षा के माध्यम से वर्तमान शिक्षा में गरिमायुक्त संस्कृति एवं गुणात्मक विकास की जानकारी प्राप्त करना।

भारतीय परंपराओं शिक्षा का मेरुदण्ड धर्म एवं विवेक

भारतीय परंपराओं भारत में जीवन की सभी क्रियाएं आचार, व्यवहार, चिन्तन, मनन, सभी धर्म की परिधि में आते थे। यही कारण है कि आर्यावर्त में शिक्षा और धर्म का बीजारोपण साथ–साथ हुआ। शिक्षा की तत्कालीन अनूठी परम्परा ने ही भारतीयों की आत्मा, शरीर, विचार तथा मस्तिष्क को शुद्ध, स्वस्थ, निर्मल एवं उर्वर बनाया। पुराणों में धर्म तो शिक्षा का मेरुदण्ड ही है। पुराणों के सभी अवतार, धर्म रक्षा हेतु अवतरित होते है। ये अवतार लोकरक्षक, लोक संस्कारक, असत्य, अपराध और अज्ञान के विनाशक और लोकाचार के आदर्श भी हैं। भारतीय जिज्ञासु शिष्य, उनसे प्रेरणा प्राप्त कर कर्तव्यपरायण जीवन जीते थे और लौकिक एवं आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त करते थे।

आधुनिक शिक्षा उपाधि एवं सूचना प्रधान

आधुनिक शिक्षा में विद्यार्थियों के सामने आज कोई उदात्त लक्ष्य नहीं है, कोई आदर्श नहीं है, कोई समर्पण नहीं है, कोई प्रेरणा नहीं है। उनका एक मात्र उद्देश्य है – किसी भी प्रकार डिग्री प्राप्त कर लेना ताकि उसके बल पर बढ़िया नौकरी प्राप्त की जा सके और ऐशो आराम की जिन्दगी बितायी जा सके। भारतीय –परंपराओं शिक्षा अबाल, वृद्ध सभी के लिए है। इसमें आज की तरह. बाल शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा विभाग नहीं किये गये हैं क्योंकि शिक्षा को समग्रता में देखा गया था। तत्कालीन एक गुरु स्वयं एक संस्था होता था। वह प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कराने में समर्थ था। शिक्षा को खण्ड खण्ड में न देखकर अखण्ड रूप में देखा गया था।

भारतीय –परंपराओं शिक्षा सम्पन्न वर्गों से सामान्य वर्गों तक, राजा से रंक तक, सब के लिए थी। गाँव में वृद्ध–विपन्न तक इस शिक्षा से लाभान्वित होते रहे हैं।

विवेकानन्द के इस कथन पर यह शिक्षा सही ठहरती है। उन्हीं के शब्दों में ष्दरिद्रता और अज्ञान के गर्त में सदा से डूबे हुए उन करोड़ों नर नारियों के दुःख को कौन अनुभव करता है ? मैं उसी को महात्मा कहूँगा जो उनके दुःखों का अनुभव करता है।

जिसके हृदय में उनके दुःखों के लिए टीस होती है उन्हें न कहीं प्रकाश मिलता है न शिक्षा ।श उन्हें प्रकाश कौन देगा ? कौन उनको शिक्षा देने के लिए द्वार–द्वार भटकेगा ? इन्हीं को तुम अपना ईश्वर समझो, निरन्तर इनका ध्यान करो, उनके लिए काम करो, उनके लिए निरन्तर प्रार्थना करो, ईश्वर तुम्हें मार्ग दिखायेगा।

भारतीय परंपराओं शिक्षा उच्चादर्शपूर्ण सांस्कारिक एवं आध्यात्मिक

परंपराओं ‘सत्य नारायणश की कथा इन्हीं दीन दरिद्रों को सत्य से परिचित कराने का उपक्रम था। जो आज भी घर–घर किसी न किसी रूप में चल रहा है। भारतीय परंपराओं शिक्षा के उच्चादर्श शिष्य की अतृप्त ज्ञान पिपासा, पूर्णता प्राप्ति की साधना, गुरु शिष्य सम्बन्ध, ब्रह्मचर्यव्रत और गुरु–शिष्य का तपोमय जीवन और सांस्कारिक जीवन पद्धति, ये सबसे सब भारतीय परंपराओं परम्परा के ऐसे बिन्दु है जिन पर आज भी ऊँगली नहीं उठाई जा सकती है। इस काल की शिक्षा त्याग परक है। तत्थ्यातथ्य का विवेचन, आत्मा परमात्मा तथा आध्यात्मिक भक्ति परक संस्कृति पुराणों का प्रधान विषय

आधुनिक शिक्षा भौतिकतामयी, आदर्श एवं संस्कार विहीन

आज का युग वैज्ञानिक युग है। ‘मानव लोभ, दंभ, द्वेष, आदि विकारों में जकड़ा हुआ सांसारिक सुखों की मृगतृष्णानुभूति हेतु अव्याहृतज प्रवाह से दौड़ रहा है। युवा वर्ग पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति को शाश्वत् व चिरन्तन मानकर भौतिक सुखों के पीछे भटक रहा है। पाश्चात्य गुण सम्पन्न वर्तमान शिक्षा हमारे विश्वविजयी कुल–गुरु भारतीय नागरिकों को दिग्भ्रान्त कर भौतिकता, विलासिता व वैमनस्य का पाठ पढ़ा रही है। परिणामतः भारतीय समाज की धुरी युवा वर्ग, आस्थाहीन, श्रद्धाविहीन, अविवेकी व हृदयहीन होता जा रहा है। मात्र येनकेन प्रकारेण शिक्षा सम्बन्धी अंक या प्रमाण पत्र प्राप्त कर लेना ही शिक्षा का स्वरूप है और प्रमाण पत्र के आधार पर जीवन को विलासी रूप में संचालित कराने के उपलब्ध उद्यम ही शिक्षा का मूलोद्देश्य है। यही कारण है शिक्षा के मूल्यों में निरन्तर ह्रास हो रहा है। इसी कारण वर्तमान शिक्षा मानवीय गुणों का विकास नहीं कर पा रही है।

सार्वजनीन एवं सर्वांगीण भारतीय –परंपराओं शिक्षा

भारतीय –परंपराओं शिक्षा व्यक्ति को ढपोरशंख न बनाकर उसे व्यवहार कुशल व कर्तव्यपरायण बनाती थी। इस प्रकार यह शिक्षा व्यक्तित्व विकास, सामाजिक प्रगति और सुख शान्तिमय जीवन का पथ प्रशस्त करती थी। इस काल में वेदों, पुराणों, उपनिषदों में प्रतिपादित तत्वज्ञान सभी दार्शनिक विचारधाराओं, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद, शल्य चिकित्सा, मूर्तिकला, जन्तु विज्ञान, व्यवहारशास्त्र, अश्वशास्त्र, रत्न परीक्षा, वास्तु विद्या, सामुद्रिकशास्त्र, धुनर्विद्या आदि का अध्यापन तो होता ही था, साथ ही पुराणों में अनुलेपन, स्वेच्छारूपधारिणी, सर्वभूतगत, पद्मिनी, जलान्धरी, पुरुष प्रसोहिनी, वज्रवाहनिका आदि विद्याओं का भी निरूपण हुआ है। इस प्रकार भारतीय परंपराओं शिक्षा का स्वरूप व्यापक था। इस शिक्षा में आध्यात्मिक उन्नति को महनीय माना गया है।

जिसकी आध्यात्मिक दृष्टि नहीं है प्रत्युत भौतिक दृष्टि है, उनको ही भौतिक उन्नति नहीं दिखती है। अधिक भौतिकता विनाश को जन्म देती है, शान्ति को नहीं, आवश्यकता से अधिक धन यक्ष–राक्षसों के पास ही होता है। इसलिये जो केवल धन का संग्रह करता है तथा उसकी रक्षा करता है वह 'यक्षविन्तश कहलाता है, यक्षविन्त का पतन होता है।

यक्षविन्तः पतत्यधः। (श्रीमद्भागवत पुराण–11/23/24)

फिर भोगी व्यक्ति को संसार का सारा वैभव भी मिल जाए तो भी वह सन्तुष्ट नहीं हो सकता। श्रीमद्भागवत महापुराण का स्पष्ट मत है –

यत् पृथिव्यां प्रीछियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
न दुहवन्ति मनः प्रीति पुंसः कामहत्तस्य ते।। (श्रीमद्भागवत पुराण–1/19/13)

अर्थात् पृथ्वी पर जितने भी धन्य, स्वर्ण, पशु और स्त्रियां हैं, वे सब के सब मिलकर भी उस पुरुष के मन को सन्तुष्ट नहीं कर सकते, जो कामनाओं के प्रहार से जर्जर हो रहा है।

इस प्रकार भारतीय परंपराओं शिक्षा आध्यात्मिकता और नैतिकता के उच्चतम आदर्शों पर आधारित है किन्तु आधुनिक शिक्षा भौतिकता की प्राप्ति पर प्रायशः

अवलम्बित है। भारतीय परंपराओं शिक्षा के काल विषय में डा० अनन्त सदाशिव अल्तेकर ने अपना मंतव्य इस प्रकार प्रकट किया है – श्इस काल में भी शिक्षा के क्षेत्र में भारत की शिक्षा के अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र के रूप में ख्याति थी। विदेशी विद्यार्थियों ने इस काल के आचार्यों की विलक्षण व्याख्या शक्ति और पाण्डित्य की प्रशंसा की है। इस काल में निःशुल्क उच्च शिक्षा की पर्याप्त व्यवस्था की थी। परंपराओं काल जहाँ अध्यात्म, भक्ति, नैतिकता और मानवीय मूल्यों के चरम विकास का काल है, वहीं गुरु की व्यापक प्रतिष्ठा और महत्ता का भी काल है। इस काल में एकता की भावना और अखण्डता में ही सम्पूर्ण तत्व विचार प्रस्तुत हुआ। ज्ञान का इस काल में अत्यन्त महत्व रहा है। यह ज्ञान प्रकाश का और अमरत्व का प्रतीक भी रहा है। परंपराओं विद्या में सहअस्तित्व, राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता के मूल स्वर सुने जा सकते हैं। भारतीय –परंपराओं शिक्षा का लक्ष्य 'सर्वे भवन्तु सुखिनःश रहा है। लोक कल्याण की भावना वेदों पुराणों में पदे–पदे दिखती है। शिक्षा के क्षेत्र में वेदों पुराणों का सार्वभौमिक विचार और लोक मंगल की भावना को देखकर ही भारत के विषय में यह कहा गया है कि सारा विश्व ही भारतीय मानव रूपी पक्षी के लिए एक घोंसले के समान है – श्यत्र विश्वं भवेत्कमनीडम्श परंपराओं काल में मुख्यतः प्रत्यक्ष तथा मौखिक भी प्रवचन के रूप में भाषण, श्रवण, मनन, चिन्तन, कंठस्थ करना आदि क्रियाओं का प्रयोग शिक्षण प्रक्रिया में होता था। वाद–विवाद परिचिर्चा भी शिक्षा के माध्यम थे। गुरु शिष्य में अत्यन्त पवित्र और स्नेहपूर्ण संबंध थे। भारतीय –परंपराओं काल में आज के समान दूषित परीक्षा प्रणाली नहीं थी शिक्षार्थी को पढ़ाने वाला शलाका परीक्षा द्वारा स्नातक की उपाधि प्रदान कर देता था। इस पद्धति का सबसे बड़ा लाभ यह था कि उस युग में आज के समान शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य परीक्षा उत्तीर्ण करना तथा उपाधि प्राप्त करना न था, वरन् इसी कारण तत्कालीन विद्यार्थियों को ज्ञान का गहरा पाण्डित्य प्राप्त होता था न कि आज के

समान पल्लव ग्राही। उस काल में गुरुकुलों, परिषदों व विद्वत् सभाओं के माध्यम से शिक्षण कार्य सम्पन्न होता था।

भारतीय –परंपराओं शिक्षा परम्परा में, शिक्षा अर्थ जानना मात्र नहीं है विद् धातु से कई शब्द बनते हैं – वेद, (प्रकाशमय ज्ञान की प्राप्ति) विद्या विद्यामान वित्त धन, इसका अर्थ यह हुआ कि विद्या बहुत व्यापक अर्थ रखती है। आचार्य पतंजलि ने विद्या की तब तक उपयोगिता नहीं मानी है जब तक वह चार प्रक्रियाओं से सम्पुष्ट न हुई हो। ये चार प्रक्रियायें हैं – अध्ययन, मनन, प्रचचन, और प्रयोग। अध्ययन का अर्थ है कि जिज्ञासु होकर कहीं उचित गुरु के पास जाना, विनय पूर्वक उसकी शिक्षा ग्रहण करना। शिक्षा

केवल अक्षर की ही नहीं होती, हर एक कौशल की, हर एक कला की होती है और सिखाने वाले केवल साक्षर व्यक्ति नहीं होते। गाड़ी हांकने वाले और गंवार भी राजा को शिक्षा दे सकते हैं। काशी का चाण्डाल भी शंकराचार्य को शिक्षा दे सकता है। भारतीय शिक्षा गुरु को ही संस्था मानती रही है। आज की शिक्षा और शिक्षक तथा शिक्षार्थी आदि पुराणों की इस परम्परा और स्वरूप को अपनी शिक्षा में समन्वित कर सके तो भारतीय शिक्षा पुनः अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा और मौलिकता प्राप्त कर सकेगी।

भारतीय परंपराओं शिक्षा के उद्देश्यों एवम् वर्तमान शिक्षा के उद्देश्यों में अन्तर

भारतीय –परंपराओं शिक्षा का उद्देश्य जीवन के उद्देश्य से भिन्न नहीं हो सकता क्योंकि शिक्षा का वास्तविक कार्य तो मनुष्य को उसकी आन्तरिक सामर्थ्य के अनुसार, इस योग्य बना देता है कि वह मानवीय जीवन के उद्देश्य को समझ सके और मनुष्यता के चरम आदर्श को प्राप्त कर सके। यहाँ पर यह असंगत न होगा यदि भारत के पुराने

विचारकों के अनुसार निर्दिष्ट मानव जीवन के उद्देश्यों पर संक्षेप से दृष्टिपात करें तो सर्व प्रथम दो उद्देश्य हैं – अर्थ और काम। इन दोनों को सामयिक शब्दावली में, आत्म और जाति अथवा वंश – परम्परा की रक्षा की प्राकृतिक भावना कह सकते हैं, पर यह केवल मानव जाति की ही विशेषतायें नहीं हैं, बल्कि यह छोटी से छोटी वनस्पति और क्षुद्र से क्षुद्र पशुओं में भी पायी जाने वाली भावनायें हैं।

ये मनुष्य के शारीरिक और बौद्धिक कार्य कलापों को उसके जीवन पर प्रभावित करती रहती है, चाहे इनका स्वरूप कुछ भी हो। यहाँ तक कि कुछ पशु भी इस बात को समझते हैं और अपने व्यवहार और स्वभाव द्वारा इसका परिचय भी देते हैं। समुदाय के अन्य सदस्यों के अर्थ और काम का किसी सीमा तक ध्यान रखना आवश्यक है। दल के प्रत्येक सदस्य को भोजन का, सहवास का और बच्चों को पालने का अवसर अवश्य देना होगा और दल के शिशुओ की रक्षा एक अनिवार्य उत्तरदायित्व है।

भारतीय –परंपराओं शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान शिक्षा में व्याप्त दोषों का परिहार

पूर्व के दो खण्डों में भारतीय –परंपराओं शिक्षा एवं वर्तमान शिक्षा का स्वरूपगत, उद्देश्यगत अन्तर बताया जा चुका है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के स्तर पर अनेक दोष दृष्टिगत अन्तर बताया जा चुका है। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था के स्तर पर अनेक दोष दृष्टिगत होते हैं। शिक्षा का संचालन सूत्र शिक्षाविदों के

हाथ में न होकर नेताओं, भारतीय प्रशासन सेवा के अधिकारियों एवं पी०सी०एस० अधिकारियों के हाथ कहीं अधिक हैं। शिक्षाविदों की कमेटी अथवा आयोग शिक्षा के सुधार हेतु बनते तो अवश्य हैं परन्तु उन आयोगों को उनके क्रियान्वयन का कोई अधिकार नहीं होता। साथ ही सत्यनिष्ठा पूर्वक उनका क्रियान्वयन भी नहीं होता। सदासद् होना नितान्त आवश्यक है।

परीक्षा एवं शिक्षक चयन विषयक दोष निवारण की आवश्यकता

वर्तमान शिक्षा का एक बहुत बड़ा दोष परीक्षा प्रणाली और शिक्षक चयन का भी है। ऐसी परीक्षा प्रणाली आज चल रही है जो स्वयं दिशाहीन है, अंकों की प्राप्ति ही योग्यता का मानक बन चुकी है। इस मानक का परिणाम यह हुआ है कि आस–पास ही शिक्षा सिमट गयी है। इन अंकों की प्राप्ति के लिये कहीं नकल का सहारा, तो कहीं शिक्षक के कन्धे पर बन्दूक भी रखी जाती है। आवश्यक प्रश्न मांगे जाते हैं। न जाने कौन–कौन से तिकड़म यह अंकात्मक परीक्षा परक शिक्षा कराती है। शिक्षक भी परीक्षा केन्द्रित अध्यापन करते हैं। इस प्रकार छात्रों में न मौलिक प्रतिभा का संचार होता है न ही आत्म बल का।

अन्य दोष निवारण

आज की शिक्षा अराजकता की प्रतीक सी बनती जा रही है। वे लोग भी शिक्षक हैं जिन्हें यह भी पता नहीं कि उनके छात्रों का क्या पाठ्यक्रम है। वे भी शिक्षक हैं, जो छात्रों को शंकाओं का समाधान नहीं कर सकते, वे भी शिक्षक के पद पर नियुक्त हैं जिन्हें शिक्षा में कोई रुचि नहीं। उसका यह कारण है कि शिक्षकों के चयन का मापदण्ड योग्यता न होकर, बी०टी०सी०, बी०एड०, एल०टी०, एम०एड०, पी–एच०डी०, नेट अथवा अन्य किसी भी प्रकार की परीक्षा पास करना है। यह डिग्रियाँ, अंक पत्र, आवश्यक नहीं, योग्यता के परिचयक भी हों। यदि शिक्षक में योग्यता नहीं, चरित्र नहीं, शिक्षण कार्य के प्रति रूचि और निष्ठा नहीं तो क्या वह सफल शिक्षक हो सकता ? किन्तु जाने अनजाने आज कुपात्रों का चयन हो रहा है। आज योग्यता की अपेक्षा किसी मंत्री, अधिकारी, पूंजीपति, अथवा कुख्यात पिता का पुत्र होना कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। आधुनिक शिक्षा पर अधिकारियों, नेताओं व माफियाओं व धन पशुओं का शिकंजा दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। शिक्षाविदों के स्वतन्त्र अधिकार से शिक्षा दूर होती जा रही है। धन सम्पन्न, विविध नई–नई डिग्रियाँ खरीद रहे हैं, और निर्धन उनकी ओर देख पाने में भी असमर्थ होते चले जा रहे हैं।

वेद पुराणों में आदर्श शिक्षाव्यवस्था का चित्र

आधुनिक शिक्षा का एक दोष छात्रों को दुर्व्यसनों, असंयम से हटा न पाना भी है। चरित्र, संयम, आत्मबल शब्दों से भी उन्हीं चिढ़ होती जा रही है, क्या इन शब्दों से भी शिष्ट कोई शब्द उपलब्ध होंगे ? जब चरित्र ही नहीं होगा तो आज के शिक्षार्थियों के पास क्या बचेगा ? क्या सिर्फ धन ही सब कुछ है ? उद्योगपर्व–महाभारत में कहा गया वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् विन्तमायाति च

अक्षीणे विन्ततः क्षीणों, वृन्ततस्तु हतोहतः ।। (महाभारत–उद्योगपर्व–36/30)

इस नीति श्लोक में चरित्र की महत्ता वर्णित है। आज की शिक्षा का चरित्र निर्माण से कोई सीधा सम्पर्क नहीं है। उच्चतर मानवीय मूल्य निरन्तर पतन की ओर उन्मुख हो रहे हैं। जिसके कारण समूचा समाज रूग्ण सा होता जा रहा है। क्षुद्र स्वार्थों हेतु आज कोई भी नियम तोड़े जा रहे हैं। धन, सर्वस्व बनता जा रहा है। जबकि परंपराओं परम्परा थी –

अकृत्व परसन्तापमगत्वा खलमन्दिरम् ।

अनुलंध्य सतौ मार्गः यद् स्वल्पमपि तद् बहु ।। (वामनपुराण–14/19)

अर्थात बिना दूसरे को कष्ट पहुंचाये, बिना दुष्ट के पास गये और बिना सज्जनों के मार्ग को छोड़े, जो थोड़ा भी उपलब्ध हो वह बहुत है। ऐसी पवित्र जीवन पद्धति चारों पुरुषार्थों को प्रदान करती है। धर्म ही उसकी जड़ अर्थ, उसकी शाखा काम, (भोग) उसका पुण्य और मोक्ष उसका फल है। वामन

पुराण के शब्दों में –

धर्मोऽस्य मूलं धनमस्य शाखा।

पुण्यं च कामः फलमस्य माक्षः।। (वामनपुराण–14/25)

परंपराओं शिक्षा प्राणिमात्र के प्रति दया और विश्वहित में विश्वास करती है। पुराणों, उपपुराणों की कथायें सन्मार्ग की ओर ले जाने वाली अबाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी का हित करने वाली है।

सत्कथासु प्रवर्तन्ते सज्जना ये जगद्धिताः।

(वायुपुराण–91203) यही भावना भागवत् पुराण (3/12/3), वायु व गरुण पुराण में भी व्यक्त हुई है।

भारतीय –परंपराओं शिक्षा दर्शन, ऋषियों मुनियों के आचरण में दृष्टिगत होता है। उदारवादी लोक मंगलकारी भावना से परिपूर्ण इन आचार्यों की दृष्टि में सारा विश्व एक परिवार की भांति था। प्राणिमात्र के प्रति प्रेम, दया, सहानुभूति व सौहार्द व उच्चतर चिन्तन मानव मूल्यों को चिरस्थायी बनाने का उपक्रम, उन्होंने शिक्षा में किया है।

भारतीय –परंपराओं शिक्षा में परा एवं अपरा दोनों विद्याओं को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया था। परा विद्या के अन्तर्गत वेद, वेदांग, दर्शन, उपनिषद् आदि आध्यात्मिक विषयों को सम्मिलित किया गया था और अपरा विद्या के अन्तर्गत तर्कशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, ज्योतिष, गणित एवं भौतिक शास्त्र आदि थे। उपनिषदों से श्रवण का, ब्रह्मसूत्र से मनन का और गीता से निदध्यासव का उद्देश्य पूर्ण होता था। इस प्रकार भारतीय –परंपराओं शिक्षा की पाठ्यचर्या में धार्मिकता एवं नैतिकता के विकास हेतु आध्यात्मिक विषयों की अधिकता थी। साथ ही स्वावलम्बन, स्वदेश रक्षा तथा जीवन के समस्त क्षेत्रों से सम्बन्धित अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति के निमित्त विभिन्न विद्याओं का समायोजन था जिसके द्वारा मनुष्य इहलौकिक तथा परलौकिक दोनों सुखों की प्राप्ति कर सकता था।

विद्वान व आचारनिष्ठ शिक्षकों का उस काल में व्यापक सम्मान था। इन तपःपूत आचार्यों के समुपदेशों के लाभार्थ बड़े–बड़े राजा भी लालायित रहते थे। शिक्षक और शिष्यों की परम्परा, पीढ़ी दर पीढ़ी तक अपना धर्म मानकर ज्ञान परम्परा को अपनी

अगली पीढ़ी तक पहुंचाने का दायित्व पूरा करते थे। गुरुओं में गुरूत्व था। इस गुरुत्व का ही परिणाम था कि शिष्य को गुरू के सम्मुख नतमस्तक रहना पड़ता था। द्रोणाचार्य अपने प्रिय शिष्य अर्जुन के प्रति सर्वतोभावेन स्नेहयुक्त है। अर्जुन भी धर्मार्थ गुरू से युद्ध तो करते हैं किन्तु पहले चरणों के पास तीर फेंककर प्रणाम करते हैं। शिष्य कर्ण अपने गुरू की निद्राभग्न न हो इस लिय अपनी जंघा से गुरू के सिर को नहीं उठाते।

जबकि कीट उनकी जंघा को निरन्तर लहुलुहान कर रहा था। महर्षि व्यास, कपिल, गर्गाचार्य, कृपाचार्य, वशिष्ठ, विश्वामित्र, भीष्म, महाप्राज्ञ विदुर, नारद, शुकदेव, अथवाशौनक ऋषि सभी ब्रह्मज्ञानी और अप्रतिम व्यक्तित्व थे। क्या उनके सम्मुख कहीं आज के शिक्षक ठहरते हैं ? ऐसा क्यों ? इस कारण पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि आज की शिक्षा एकांगी है। साक्षरहीनों या किसी उपांङ् को पढ़ लेने मात्र को ही शिक्षा कह देते हैं। इस शिक्षा से शास्त्रीय संस्कार ही नहीं होता पुनश्च ब्रह्ममयता की तो कल्पना भी व्यर्थ है। इस संकीर्ण और बोझिल शिक्षा के स्थान पर वेद पुराणों की भक्तिमयी पूर्णता युक्त आध्यात्मिक शिक्षा कहीं और भी प्रासंगिक हो गयी है। अतः

आवश्यक है कि आधुनिक शिक्षा में व्यापक परिवर्तन किया जाये। वर्ग विहीन सार्वजनीन भारतीय परंपराओं शिक्षा के धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, उच्चतर नैतिकतागत तथा समस्त जीवपोपयोगी पक्षों पर वर्तमान शिक्षाक्रम में बल दिया जाये, जिससे छात्रों में मानवता, सदाचार, नैतिकता, स्वाध्याय, आत्मानुशासन, स्वावलम्बन और सद् असद् वस्तु की विवेक हो सके। वर्तमान शिक्षा में व्याप्त दोषों को दूर करने हेतु भारतीय परंपराओं शिक्षा की दृष्टि से जिन बिन्दुओं पर व्यापक विचार की आवश्यकता है, उनका यथेष्ट विवरण अष्टम् अध्याय के अन्तिम खण्ड शिक्षा व्यवस्था सुधार के लिये सुझाव में किया गया है।

निष्कर्ष

परंपराओं शिक्षा के विषय' से विवेचित किया गया है। वेद पुराण अनन्त विषयों और अनन्त ज्ञान राशि के भण्डार हैं। प्राचीन काल से वर्तमान काल तक जितने भी ज्ञान विज्ञान तथा कला व शिल्प आदि के क्षेत्रों का और इसकी शाखा प्रशाखाओं का आविष्कार हुआ है, उनका सन्निदेश त्रिकालदर्शी ऋषियों ने किसी न किसी रूप में भारतीय –परंपराओं साहित्य के अन्तर्गत प्रस्तुत किया है। इनमें वेद, उपनिषदों और पुराणों में प्रतिपादित जटिलतम विषयों को भी आख्यान तथा उपाख्यानों के माध्यम से दर्शन और आध्यात्म को सर्वसाधारण के लिए भी बोधगम्य बना दिया है। चारों वेदों तथा उपवेदों, छः वेदांगों षड्दर्शनों, एवं दर्शनों के भेदोपभेदों का अभिनिवेश पुराणों का विषय बना है। इसके अतिरिक्त शिल्प शास्त्र, चित्रशास्त्र, प्रतिमाशास्त्र, चतुर्दश विद्याओं (चार वेद, छः वेदांग, धर्मशास्त्र) पुराण, मीमांसा और तर्क से लेकर चौसठ कलाओं तक की शिक्षा का प्रतिपादन पुराणों के अन्तर्गत हुआ हैं धर्मनीति, राजनीति,

अर्थनीति, सदाचार, अर्थशास्त्र और तत्व ज्ञान का सरस और विस्तृत विवेचन भी इन पुराणों का विषय बना है। सम्यक् आचार व नियमित दिनचर्या भी पुराणों के अन्तर्गत निरूपित हुई है।

संदर्भ

1. पांड्या, आर.एस. 2010, एजुकेशनल रिसर्च, एपीएच पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन, नयी दिल्ली.
2. बेरेल्सन, बी, 1952. कंटेंट एनालिसिस इन कम्यूनिकेशन रिसर्च, ग्लेको, प्प्. फ्री प्रेस.
3. भाग:, 1990. वैल्यू आइडेंटीफिकेशन इन ग्ज स्टैंडर्ड इंग्लिश प्रोज़ एंड वैल्यू ओरिएंटेशन ऑफ़ प् स्टैंडर्ड स्टूडेंट. अनपब्लिश्ड एम.एड. डिज़र्टेशन. मद्रास यूनिवर्सिटी, मद्रास.
4. राज गोपाल,टी. 1989.आइडेंटिफ़िकेशन ऑफ़ वैल्यूज़ इन स्टैंडर्ड तमिल टेक्स्ट बुक्स एंड वैल्यू ओरिएंटेशन ऑफ़ ग्प् –– स्टैंडर्ड स्टूडेंट. अनपब्लिश्ड एम. फिल. डिज़र्टेशन. अलागापा यूनिवर्सिटी.
5. राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तक, कक्षा 6, 7 एवं 8. 2014–2015.
6. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा दृ 2005. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.
7. वर्मा, जी.एस. 2006, मूल्य शिक्षा पर्यावरण एवं मानवाधिकार. इंटरनेशनल पब्लिशिंग, मेरठ, शर्मा, आर.ए. 2006. सामाजिक विज्ञान शिक्षण, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ.
8. शर्मा, आर.पी, और एम. शर्मा, 2011. वैल्यू एजुकेशन एंड प्रोफेशनल एथिक्स. कनिष्का पब्लिशर्स, नयी दिल्ली.
9. शर्मा, एन. 2011. वैल्यू एजुकेशन एंड सोशल ट्रांसफॉर्मेशन. रावत पब्लिकेशन, जयपुर.
10. शर्मा, एस.पी. 2011. टीचिंग ऑफ़ सोशल स्टडीज़ – प्रिंसिपल्स, अप्रोचिज़ एंड प्रैक्टिस, कनिष्का पब्लिशर्स, नयी दिल्ली.
11. सिन्हा, साधना. 2008. माध्यमिक स्तर के भाषा एवं सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रमों में मूल्य–आधारित विषय–वस्तु का विश्लेषण (पीएच.डी.). राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर.
12. हॉल्स्टी, ओ. आर. 1969, कंटेंट एनालिसिस फ़ॉर दी सोशल साइंसेज एंड ह्यूमैनिटीज़. रीडिंग, एमए –एडिशन–विस्ले.
13. त्रिवेदी, आर.एन, और डी.पी. शुक्ला. 2012. रिसर्च मैथडोलॉजी. कॉलेज बुक डिपो, जयपुर.